# तनिक बैठ सोचो तो, बंधु!

दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय'

**: एक :**

बाहर नहीं
भीतर ही है
आनंद का गोमुख
बाहर तो
करण उपकरण भर हैं
आनुषंगिक प्रासंगिक।

**: दो :**

बहिर्गति
विषाद की पाती है
मोह के रंग राती है
बाँधे है
जन्म-जन्मांतरों की रास
अपने चारों ओर।

**: तीन :**

इच्छाओं के चरण बढ़ाती
ज्ञान सोपान चढ़ती
क्रिया की गतिशीलता ही
लाँघती है
संसार-भवन की देहरी
पास में है जिसके
ज्ञान-मंजूषा
नहीं है पूर्णता
उससे दूर।

**: चार :**

जुते हैं
श्रद्धा के रथ में
प्रेम के मनोहर अश्व

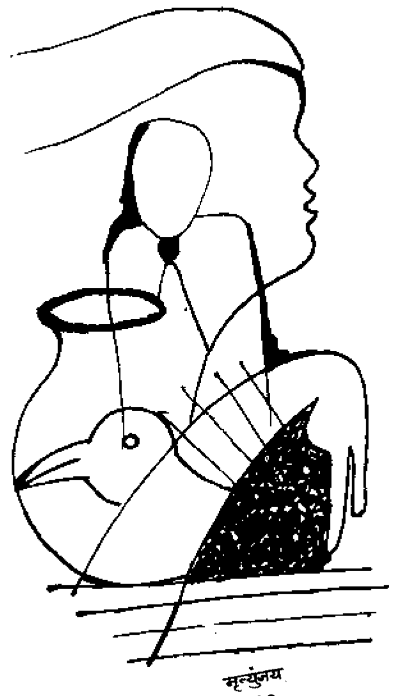


भक्ति की रास से हाँकता
ज्ञान ही पहुँचता है
पूर्णता-भवन के द्वार
जहाँ खड़ी है
आरती का थाल लिये
समर्पण का जय-जयकार करती
आस्था स्वागतार्थ।

**: पाँच :**

साधना की फुलवारी में
सींचते रहो सतत
ज्ञान-जल से
इच्छाओं की पौध
पूर्णता
न तो वाग्विलास है
न दिवास्वप्न
सत्य है
दर्पण में दिखे
प्रतिबिंब-सा स्पष्ट
हथेली की रेखाओं-सा प्रमाणित
सूरज के उगने
आँथने-सा अटल।

**: छह :**

जोहती रहती है
पूर्णता भी
साधना गुहा की खिड़कियों से
छिप-छिप झाँकती
मौन संकेतों से
अहर्निश आह्वान करती
साधक की बाट।

**: सात :**

पूर्णता की कोख से ही
निकलती है
आनंद की जाह्नवी
पर्याय है
पूर्णता का ही
आनंद
तनिक बैठ
सोचो तो, बंधु!

☐

सिविल लाइंस,
कोटा-३२४००१
(राज.)